शिक्षा, विवेकशीलता और मतारोपण

रोहित धनकर

शिक्षा और विवेकशीलता का संबंध क्या है ? आमतौर पर माना जाता है कि शिक्षा विवेकशील चिन्तन का विकास करती है। लेकिन समाज में इसका उल्टा ही व्यवहार देखने को मिलता है। इस व्याख्यान में विवेकशीलता के मायने और शैक्षिक अभ्यास में इसके निहितार्थों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही आज के समय में शिक्षा और समाज में चल रही बहसों को केन्द्र में रखते हुए कहा गया है कि यह बहसें मतारोपण का जरिया हैं और यदि हम बच्चों में विवेकशील चिन्तन का विकास करना चाहते हैं तो आरंभ से ही स्कूल में बच्चों को सवाल पूछने, कारण जानने, बिना तर्क बात नहीं मानने, संदेह करने और अपनी बात रखने के अवसर उपलब्ध कराने होंगे।

यह व्याख्यान महर्षि वाल्मिकी कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय में दिया गया था। शिक्षा विमर्श में इस व्याख्यान की उपलब्धता के लिए हम महर्षि कॉलेज के आभारी हैं।

मित्रो, मुझे शिक्षा में काम करने वाले साथियों और विद्यर्थियों से बातचीत करने का अनुभव तो है, पर औपचारिक व्याख्यानों का कुछ खास अनुभव नहीं है। अतः आज के व्याख्यान की शुरूआत मैं बहुत औपचारिक ढंग से नहीं करूंगा। बहुत सारी चीजें मैं संकेत रूप में दर्ज करूंगा जो कि आगे प्रश्नों के लिए आवश्यक होंगी, लेकिन इससे पहले मैं कॉलेज के प्रबंधन, प्राचार्या महोदया, राघवेन्द्र प्रपन्न और बाकी फेकल्टी का धन्यवाद करता हूं कि इस अवसर पर आपकी खुशी में शामिल होने का अवसर मुझे मिला। मुझे इस बात की भी खुशी है कि आज जो बातें मैं कहने जा रहा हूं वे उन होनहार शिक्षकों के बीच में की जा रही हैं जो आगे स्कूलों में जाएंगे और जिनका वर्तमान शिक्षा के स्वरूप को बदलने में महत्त्वपूर्ण हाथ हो सकता है। मेरे लिए यह विशेष रूप से खुशी की बात इसलिए भी है कि इस कॉलेज के विद्यार्थी बीएड में बहुत अच्छी तरह पास होते हैं। हमारे देश में बहुत कम बीएड प्रोग्राम हैं जहां के विद्यार्थी बहुत उत्साह से काम करते हैं। यदि किसी कॉलेज के विद्यार्थी बहुत उत्साह से काम करते हैं तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है। इसलिए आप सब लोगों का धन्यवाद।

आज की इस चर्चा में मैं कोई बहुत नई बातें नहीं कहूंगा। कुछ जानी-पहचानी-सी बातें होंगी, लेकिन कई बार जानी-पहचानी बातें नए संवादों को जन्म देती हैं। अभी शिक्षा में जिस प्रकार की समस्याएं चल रही हैं, मुझे ऐसा लगा कि बहुत जानी- पहचानी बातों को एक बार परख कर आज के संवादों से उनके रिश्ते देखने की जरूरत है। मैं आज की चर्चा में दो चीजों पर मुख्यतः बात करूंगा। जिस प्रकार से आपके कॉलेज के बारे में प्राचार्या महोदया ने कहा कि बहुत-सी चुनौतियों से यह कॉलेज गुजरा है, उसी तरह आज की भारतीय शिक्षा भी, विभिन्न प्रकार, से बहुत-सी चुनौतियों से गुजर रही है। और इस वक्त मैं आर्थिक और व्यवस्थात्मक चुनौतियों की बात नहीं कर रहा हूं, मैं वैचारिक चुनौतियों की बात कर रहा हूं। शिक्षा मूलतः विचार करने से जुड़ी होती है और इस वक्त भारतीय शिक्षा में जो वैचारिक चुनौतियां हैं, मैं उनकी बात कुछ हद

लेखक परिचय :

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 की संचालन समिति सदस्य, दिगन्तर के सचिव, पुस्तक : शिक्षा और समझ शिक्षा के संदर्भ और विकल्प (संपादित); आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा

सम्पर्क :

दिगन्तर, टोडी रमजानीपुरा,
खो नागोरियान रोड, जगतपुरा,
जयपुर - 302025

तक यहां करूंगा। आज की चर्चा में मूलतः दो बातें कहना चाहूंगा, उनको सिद्ध करना चाहूंगा और एक सवाल या प्रस्ताव आप साथियों और विद्यार्थियों के समक्ष रखना चाहूंगा कि किस प्रकार से इन चुनौतियों से जीता जा सकता है।

आरम्भ में मेरी बात कुछ अटपटी-सी लग सकती है। हो सकता है कुछ बातें आपको ठीक भी न लगें। ऐसी बातें जान-बूझकर कही जाती हैं। जिससे हम सवालों के माध्यम से, चर्चा को आगे बढ़ा सकें और थोड़ा बेहतर समझ सकें। पहली बात है, निकट भूत में भारतीय शिक्षा में, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा और उच्च प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में और सैकण्डरी स्कूल शिक्षा में भी, महत्त्वपूर्ण रूप से दो बहसें चली हैं। एक बहस चली थी, आप लोगों में से कुछ लोगों ने शायद इस पर ध्यान भी दिया होगा, जब नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 प्रकाशित हुई और राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद ने उसे पारित किया। उसके बाद उस पाठ्यचर्या को लेकर कुछ सवाल उठे। दूसरी अभी-अभी की ताजा बहस, शायद इसी सप्ताह में खत्म हुई हो और उसका कुछ आखिरी हिस्सा अभी भी अखबारों में चल रहा है, जो एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित नई पाठ्यपुस्तकों को लेकर है और उसपर भी कुछ सवाल उठे हैं। मैं अपने साथियों के साथ जयपुर में बात कर रहा था और हम इस तरह की चीजों पर अपने यहां विचार विमर्श करते रहते हैं। हमें ऐसा लगा कि दोनों बहसें जिन मुद्दों को लेकर उठी हैं उनमें ज्यादा मुखर स्वर शिक्षा विरोधी स्वर हैं। वो शिक्षा के पक्ष के स्वर नहीं हैं। पहला काम मैं यह करने की कोशिश करूंगा कि मैं उनको शिक्षा विरोधी स्वर क्यों कह रहा हूं, उसके तथ्य आपके सामने रखूंगा और उसके बाद इसके पक्ष में अपने तर्क रखने की कोशिश करूंगा।

दूसरी बात मैं यह कहने की कोशिश करूंगा कि, शिक्षा में वैचारिक खुलापन बनाए रखने के लिए अब हमें पहले जितना जागरूक रहना पड़ता था उससे ज्यादा जागरूक रहना पड़ेगा। और जो वैचारिक खुलेपन के संकुचन का मामला है यह न सिर्फ भारतीय शिक्षा का मामला है और न सिर्फ भारत का मामला है, ये वैश्विक मामला है। जिसमें विवेचनात्मक विचार की जमीन जितनी उपलब्ध थी वह सिकुड़ रही है और मतारोपण के आग्रह बढ़ रहे हैं।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहूंगा, वह ज्यादा विवादास्पद है। ये दोनों ज्यादा विवादास्पद नहीं हैं। अमूमन यह कहा जाता है कि, जब वैचारिक द्वंद्व होते हैं तो सलाह यह दी जाती है कि विरोध को, बहस को, आगे न बढ़ाएं। सहमति की अभिव्यक्ति करें। द्वंद्व शब्द का प्रयोग यहां मैं किसी नकारात्मक अर्थ में नहीं कर रहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि जब दो विचारों के बीच में द्वंद्व होता है तब उनमें संगति बैठाने के लिए, उनमें एक दूसरे को एक्सप्लोर करने के लिए, तीसरे और अधिक प्रभावी विचार का जन्म होता है। वैचारिक द्वंद्व किसी झगड़े का नाम नहीं है, कोई युद्ध का नाम नहीं है। वैचारिक द्वंद्व दो विचारों में एक परिपक्व आदान-प्रदान का नाम है। अमूमन वैचारिक द्वंद्व को हल करने के लिए उचित तरीका यह माना जाता है कि दोनों पक्ष एक दूसरे से मुस्कुरा कर कहें कि, 'हां, आपकी बात सत्य है। हां, आपकी बात सत्य है।' मुझे यह उचित रास्ता नहीं लगता। शायद उचित रास्ता यह है कि दोनों उतना ही मुस्कुरा कर प्यार से कहें कि आपकी बात तो गलत है लेकिन आप इंसान अच्छे हैं और इसीलिए हम दोनों मिलकर आगे इस पर बात करते हैं कि मुझे आपकी बात में क्या गलती लगती है और तब तक बात करते हैं जब तक या तो आपकी बात मुझे सही न लगने लगे या मेरी बात आपको सही न लगने लगे। इसका मतलब हुआ कि जिस चीज को हम उचित नहीं मानते उसे ज्यादा दृढ़ता से, ज्यादा प्यार से सतत कहते रहें। यह तरीका अंततः शायद बेहतर साबित होगा।

एक अन्य बात यह कि, संदेह बहुत अच्छी चीज होती है। कई बार हम यह कहते हैं कि संदेह गड़बड़ होता है। मुझे ऐसा लगता है कि प्रजातंत्र में विचार का खुलापन बनाए रखने के लिए संदेह बहुत ही आवश्यक चीज है। और इसे वातावरण में तैयार एवं पोषित किया जाना चाहिए। मुझे लगता है प्रत्येक चीज को संदेह से देखना, प्रत्येक चीज की परीक्षा करना; काम की बात है। यह सबसे ज्यादा समस्यात्मक होता है, मैं इसे सिद्ध करने की कोशिश करूंगा कि किसी भी देश के वातावरण में थोड़ी-सी ब्लैशफैमी रहनी चाहिए। ब्लैशफैमी का मतलब होता है ईश निन्दा अर्थात् किसी भी भगवान के आगे हाथ जोड़कर खड़े होने के बजाए उससे दोस्ताना अंदाज में सवाल पूछे जाने चाहिएं। बहुत जगह भगवान से सवाल पूछना वाजिब नहीं माना जाता। तो वातावरण में सम्मानपूर्वक ईश निन्दा की थोड़ी जगह होनी चाहिए। यह किसी को विवादास्पद लग सकता है कि सम्मान के साथ ईश निन्दा कैसे हो सकती है ? इसे आगे देखेंगे। मैं इन्हीं बातों को यहां कहने की कोशिश करूंगा।

शिक्षा को आप किसी भी नजरिए से देखें, उसमें बेहतर जिन्दगी की कल्पना कर पाना, बेहतर जिन्दगी के लिए चुनाव कर पाना और बेहतर जिन्दगी के लिए प्रयत्न कर पाना लाजमी तौर पर निहित होता है। चाहे फिर वह अच्छी नौकरी के रूप में हो। इसमें भावना यह होती है कि अभी तक हम जिस प्रकार से जिन्दगी जी रहे हैं उससे बेहतर जीवन जीना है। हो सकता है कि बेहतर जीवन की कल्पना इतनी ही हो या अच्छे जीवन के मायने कि, 'जो दूसरों की मदद करता है, सबसे प्रेम करता है'। आप जो भी परिभाषा लेंगे, जब भी आप शिक्षा की बात करेंगे, अच्छे जीवन की कल्पना और अच्छे जीवन के लिए उपयुक्त किस्म का चुनाव कर पाना एवं अच्छे

जीवन के लिए सक्रिय प्रयत्न कर पाना, ये तीन चीजें शिक्षा की परिभाषा में अनिवार्य रूप से होंगी। जैसे ही हम यह कहते हैं कि शिक्षा में अच्छे जीवन की परिभाषा अनिवार्य रूप से होगी तो सवाल ये खड़ा होता है कि हम तय कैसे करेंगे कि अच्छा जीवन कौनसा होता है ? क्योंकि हमारे सामने बहुत सारे विकल्प हैं। यदि आज आप कॉरपोरेट हाउस में ये सवाल पूछें तो वो बताएंगे कि अच्छा जीवन वह होता है जिसमें आपका वेतन बहुत ज्यादा है। आप अधिक खर्चा करते हैं और आप अधिक चीजें खरीदते हैं और आप रोज नई चीज खरीदते हैं, चाहे आपको जरूरत हो या न हो। खरीददारी करना आनन्द का विषय है। जब मैं छोटा था तब आनन्द का मामला, भ्रमण पर जाना, बाग बगीचों में जाना, जंगल में जाना पिकनिक पर जाना होता था। खरीददारी जरूरत का मामला था। आजकल नई पीढ़ी के लिए खरीददारी पर जाना आनन्द का मामला हो गया है। कॉरपोरेट वाले आपको बताएंगे कि शॉपिंग करना अच्छी जिन्दगी की निशानी है। और इसमें आप जितना ज्यादा खरीदते हैं उतने ही ज्यादा आप खुश हैं। बहुत सारे लोग दूसरी प्रकार की अच्छी जिन्दगी, मेरे जैसा कोई एनजीओ वाला आकर बताए कि देश में समता के लिए लगातार लड़ते रहना, कोशिश करना, प्रत्येक बच्चे के लिए शिक्षा पहुंचेः इसमें जिन्दगी लगाना अच्छी जिन्दगी का मापदण्ड है। हो सकता है कि कोई जांबाज फौजी आपसे कहे कि बहादुरी से देश की रक्षा करना, देश के सम्मान की रक्षा करना अच्छी जिन्दगी है। ऐसे में समस्या ये खड़ी होती है कि आप इनमें से किसकी बात मानकर अपनी अच्छी जिन्दगी का चुनाव करेंगे ? और जब आप खुद चुनाव करने लगते हैं, तो पहली जरूरत विवेकपूर्ण आधारों पर चुनाव करने की होती है। इसका मतलब अच्छी जिन्दगी के चुनाव और अच्छी जिन्दगी पर चलने के लिए हमें विवेक की आवश्यकता होती है।

विवेकशील चिन्तन की जरूरत शिक्षा में केन्द्रीय जगह रखती है। शिक्षा के बहुत सारे उद्देश्य हो सकते हैं जैसा कि मैंने अभी जिक्र किया कि अधिक कमाना, सुखी रहना या राजनीति में जाने की तैयारी करना या पुलिस में जाने की तैयारी करना, आदि-आदि। लेकिन आपको अन्ततः विवेक को शिक्षा के केन्द्रीय उद्देश्यों में रखना पड़ेगा। विवेकशील चिन्तन का विकास यदि शिक्षा नहीं करती है तो बाकी उद्देश्यों के पूरे होने में बड़ी बाधा आ जाएगी। चाहे वे उद्देश्य कितने ही छोटे हों। अभी तक मैं यह कहने की कोशिश कर रहा हूं कि आप शिक्षा के प्रति जो भी नजरिया अपनाएं विवेकशील चिन्तन की क्षमता पैदा करना उसके केन्द्र में होगा। यदि ऐसा है तो हम यह देखने की कोशिश करें कि किस प्रकार के चिन्तन को हम विवेकशील चिन्तन कहेंगे ?

आप में से बहुत से लोग भारतीय फिल्में देखते होंगे। मैं जब भी भारतीय फिल्में देखता हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि बदला लेने के लिए खून खराबा कर देना पूरी तरह से भारतीय सिनेमा के विवेकशील चिन्तन के दायरे में आएगा। यदि किसी चीज का औचित्य सिद्ध करना हो कि, यह आदमी ऐसा क्यों कर रहा है, ये मार-धाड़ क्यों कर रहा है, तो ये बताया जाएगा कि इसके साथ, इसके परिवार के साथ पहले ऐसा हो चुका है। यह पृष्ठभूमि के रूप में, एक तर्क के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। हमारे पॉपुलर लिटरेचर में, मैं फिल्मों को यहां लिटरेचर का हिस्सा मान रहा हूं, एक आधार यह भी लिया जाता है कि व्यक्तिगत स्तर पर बदला लेना विवेकशील चिन्तन है। इसी प्रकार से बहुत सारे आधार, बहुत सारे राजनैतिक आधार आपको मिल जाएंगे कि पार्टी की विचारधारा के अनुसार लगातार बोलते रहना, विरोधी की बात को हमेशा गलत कहना विवेकशील चिन्तन है। दोस्त की बात को हमेशा सही कहते रहना भी विवेकशील चिन्तन है। ऐसा लगता है कि विवेकशील चिन्तन की भी अच्छी जिन्दगी की तरह अनेक परिभाषाएं उपलब्ध हैं। हमें पहले यह तय करना पड़ेगा कि हम विवेकशील चिन्तन किसे कहेंगे? फिलॉसोफी ऑफ एज्युकेशन वालों का, शिक्षा दर्शन वालों का, यह शगल रहा है कि शिक्षा में विवेकशील चिन्तन किसे कहा जाए ? बहुत सारे लोगों ने इसकी बहुत-सी परिभाषाएं करने की कोशिश की है। मैं आपसे इसके लिए छः मानदण्ड शेयर करने की कोशिश करूंगा कि जिस चिन्तन में ये चीजें पूरी हो रही हों उसे हम विवेकशील चिन्तन कह सकते हैं।

इसमें पहली बात यह है कि जो निर्णय आप कर रहे हैं या जो आप मान रहे हैं, उसके कारण आपको पता होने चाहिएं। यदि आप ये मान रहे हैं, किसी जमाने में लोग ये मानते थे कि, चेचक शीतला माता के प्रकोप से होती है। मैं जिस गांव में पला-बढ़ा हूं वहां मेरे बचपन में चेचक भी होती थी और लोग ये भी मानते थे कि ये शीतला माता के प्रकोप से हुई है। और यदि गधों को चराने की मशक्कत की जाए तो चेचक नहीं होगी। इसकी जगह आज मैं यह मानता हूं कि चेचक एक वायरस से फैलता है और यदि आप उस वायरस को हटा देंगे तो चेचक खत्म हो जाएगी। यदि सबसे पहले मैं विवेकशीलता की जांच करना चाहूं तो ये होगी कि मुझे यह पता होना चाहिए कि मैं एक पुरानी बात को छोड़कर नई बात क्यों मान रहा हूं। मेरे पास इसके कारण होने चाहिएं। पहले वाली बात क्यों गलत थी, ये मुझे पता होना चाहिए और नई बात उससे क्यों श्रेष्ठ है, ये मुझे समझ आना चाहिए। तभी मैं कह पाऊंगा कि मेरे चिन्तन में विवेकशीलता का कोई तत्व है। तो पहली बात है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी मान्यताओं के बारे में, अपने कर्मों के बारे में या

अपने निर्णयों के बारे में कारण की समझ रखता है तो शायद वह विवेकशील चिन्तन के नजदीक है।

दूसरी बात ये है कि विवेकशील चिन्तन अकेले व्यक्ति का काम नहीं होता। विवेकशीलता एक सामाजिक मामला है, सामाजिक मसला है। तो फिर मेरे पास ऐसे कारण होने चाहिएं जिन्हें कि दूसरों को मनवा सकूं। यदि मैं यह कहूं, रामानुजन की तरह, कि मुझे सपने में देवी ने कहा कि चेचक के बारे में देवी वाला सिद्धान्त गलत हो गया और वायरस सिद्धान्त को सत्य मान लिया जाए, तो फिर से गड़बड़ होगी। मैं खुद तो इस कारण को मानता हूं कि, मुझे सपना आ गया, लेकिन मेरे अंदर दूसरों को कारण समझाने की क्षमता होनी चाहिए। तो विवेकशील चिन्तन की दूसरी शर्त होगी कि किसी विचार, निर्णय या कर्म को मानने के जो तर्क हैं, कारण हैं, उसके जो मानदण्ड हैं उन्हें मैं सार्वजनिक रूप से सभी के साथ बांट सकूं। मैं दूसरे लोगों को वो मानदण्ड बता सकूं।

तीसरा मानदण्ड होगा कि यदि दूसरे लोग उन मानदण्डों को नहीं मान रहे हैं और उनके विरूद्ध तर्क करें तो मैं शान्ति से, बिना गुस्सा हुए, बिना उनके विरूद्ध हड़ताल किए उनकी बात को सुन सकूं और उनका जबाव देने की कोशिश करूं। और यदि मैं उनकी बातों का जबाव न दे सकूं तो या तो मैं उनकी बात मान लूं या कुछ समय की मोहलत ले लूं कि दो महीने रुक जाइए। मैं आपके पास और अध्ययन एवं विचार करके आता हूं। तो तीसरी बात ये हुई कि जब आपकी सार्वजनिक आलोचना हो तो आपको धैर्य से उनके जबाव देने चाहिएं। उसके बाद ही आप उसे विवेकशील चिन्तन कह पाएंगे।

चौथी बात ये होगी कि यदि आप किसी प्रकार के जबाव नहीं दे पाते हैं तो अपने विचारों में परिवर्तन करने को तैयार हो जाएं, यह खुलापन जरूरी है। हम विज्ञान के इतिहास में देखें तो यह आसानी से समझ आ सकता है। वैज्ञानिकों द्वारा यह समझने की कोशिश की जाती रही है कि सूरज और पृथ्वी का आपसी रिश्ता क्या है ? और इसके जो सिद्धान्त विकसित हुए हैं वे अलग-अलग वक्त पर और एक से अधिक रास्तों से विकसित हुए हैं। उनमें संशोधन होते रहे हैं। इन संशोधनों के माध्यम से ही मानवीय समझ आज इस मुकाम पर है। अतः अगली बात ये होगी कि जो संशोधन करने को तैयार है वह विवेकशील चिन्तन है, अन्यथा विवेकशील चिन्तन नहीं है।

पांचवीं बात ये है कि हम जो प्रमाण मानते हैं वे सभी जगह एक से होने चाहिएं। ऐसा नहीं है कि आज यहां पर, महर्षि वाल्मिकी कॉलेज में, खड़े होकर मैं विवेकशील चिन्तन की एक परिभाषा कर दूं क्योंकि आज मेरे लिए यह सुभीते की है और जयपुर में जाकर जब मेरे साथी सवाल पूछने लगें तो उनके लिए मैं दूसरी परिभाषा कर दूं और वहां मेरे लिए वह सुभीते की हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता। मैं जिस प्रकार के आधारों को मानता हूं उनमें संगतता होनी चाहिए।

और अन्तिम है कि दूसरे लोगों को समानता का हक होता है। दूसरे उनके विरुद्ध तर्क दें तो उन्हें सुनें और उनके जवाब गढ़ने की कोशिश करें। गढ़ने की कोशिश और हम सब पर एक ही मानदण्ड लागू होते हैं। इसलिए नहीं कि मैं उम्र में बड़ा हूं, इसलिए मेरी बात सही है और दूसरा छोटा है इसलिए उसकी बात गलत है या मैं ज्यादा पैसे वाला हूं तो मेरी बात सही हो जाएगी और कोई गरीब है तो उसकी बात गलत हो जाएगी या मैं बड़ा अधिकारी हूं या शिक्षा सचिव हूं तो मेरी बात तो मामूली से तर्क के कारण साबित हो जाएगी और वो बेचारा शिक्षक है तो उसे अपनी बात के लिए बड़े तर्क देने पड़ेंगे। ऐसा नहीं हो सकता। जो मानदण्ड शिक्षा सचिव के लिए लागू होंगे वो ही शिक्षक पर लगेंगे और वही किसी चपरासी पर भी लगेंगे। विवेकशीलता समानता की हिमायती होती है। और यदि हम बच्चों में विवेकशील चिन्तन का विकास करना चाहते हैं तो उनको इस बात का अभ्यास करवाना पड़ेगा कि यदि वे किसी चीज को मान रहे हैं तो उसका कारण समझें। अपने कारणों को दूसरों से शेयर कर सकें। दूसरे उसके विरूद्ध तर्क दें तो उन्हें सुनें और उनके जबाव गढ़ने की कोशिश करें। यदि जबाव नहीं दे सकें तो पुनर्विचार करने की सामर्थ्य हो और अपने तर्क में संगत रहें। ये छः बातें हैं जिन्हें विवेकशीलता के विकास की बात करते हुए हमें मानना पड़ेगा।

यह जरूरी है कि विवेकशीलता की बात को पूरा समझने के लिए इसकी विरोधी अवधारणा-मतारोपण को भी समझा जाए। लोग कहते हैं कि राम की पूरी छवि तभी उभरती है जब रावण को भी देखते हैं। हालांकि अभी मैं यह एक रूपक काम में ले रहा हूं जिसका मैं थोड़ी देर बाद विरोध भी करूंगा। पहले हम मतारोपण को देख लें तब हम विवेकशीलता को अधिक गहराई से जान सकेंगे।

मतारोपण की भी विवेकशीलता की तरह अनेक परिभाषाएं हैं। जिस तरह विवेकशीलता को परिभाषित करना शिक्षा दर्शन में एक शगल है, मतारोपण भी एक शगल है। इस पर भी वे बहुत लिखते-पढ़ते रहते हैं। बहुत तरह की बातें की जाती हैं। तीन तरह की सरल बातों को इसके बारे में मैं यहां कहना चाहूंगा। किसी धारणा या मान्यता को विवेकविहीन और विवेक विरूद्ध आधारों पर मानना, अकारण मानना क्योंकि मेरे गुरु ने ऐसा कहा, क्योंकि मेरे पिताजी ने ऐसा कहा, इसके अलावा उस विचार को मानने के और कोई कारण नहीं हैं। अर्थात् किसी मान्यता को

किसी अथॉरिटी के, किसी अधिकार के तहत स्वीकार कर लेना, ये मतारोपण की एक निशानी है। लेकिन ऐसी सब चीजें जो किसी अथॉरिटी के कारण स्वीकार की जाएं वो मतारोपण नहीं बनतीं जब तक एक और चीज नहीं हो कि, उनको इतना दृढ़ता से स्थापित किया जाए कि उनके विरूद्ध किसी भी तर्क को सुनने को तैयार न हो। यदि उनके विरूद्ध किसी भी प्रकार का तर्क किया जाए तो कहा जाएगा कि इसके विरूद्ध तर्क करने की जरूरत ही नहीं है। ये तो स्वयं सिद्ध हैं। तो बिना कारण किसी बात को मानना और उसके विरूद्ध तर्क को अनसुना करना, किसी भी आधार पर अपने तर्क पर पुनर्विचार करने को तैयार न होना। पुनः कहा जा सकता है कि मतारोपण में तीन बातें हैं। पहली, अथॉरिटी के आधार पर मानना, दूसरों को कारण न समझाना। दो, उसके विरूद्ध तर्क को सुनने की सामर्थ्य न हो, उसमें अस्वीकार या गुस्सा का होना। तीन, किसी भी तरह के कारणों से पुनर्विचार के लिए तैयार न होना। कम से कम ये तीन चीजें होनी चाहिएं। तब जाकर हम किसी मत के बारे में कहेंगे कि ये मतारोपण है।

अब यदि आप इस बात को ध्यान से देखेंगे तो यह पाएंगे कि मतारोपण अपनी बात को, अपने चिन्तन के तरीकों को दूसरों से श्रेष्ठ मानने की तरफ ले जाएगी। क्योंकि इसमें एक बात ये होगी कि मैं जो मानता हूं वह अन्तिम सत्य है और इसके विरूद्ध न कोई तर्क हो सकता है और न ही उस पर पुनर्विचार किया जा सकता है। इसका मतलब है कि मेरे पास अन्तिम सत्य है और यदि आप उसका विरोध कर रहे हैं तो वह गलत है। दूसरी बात ये होगी कि यह असमानता को बढ़ावा देगी। दो प्रकार की असमानताएं- एक वह व्यक्ति होता है जो मतारोपण करने वाला होता है और दूसरा वह होता है जिसके मन में मतारोपण किया जा रहा है। इन लोगों में एक असमानता है। जब आप चेचक को वायरस से होने को साबित करेंगे या उस पर बात करेंगे तो इसमें एक बात होती है कि आप उसे समझाने की बात करेंगे। इसका मतलब है कि आप उसकी बुद्धि का सम्मान करेंगे। जब तक उसको समझ नहीं आएगा तब तक आप उसको समझा रहे हैं। लेकिन यदि आप मतारोपण के तरीके से चल रहे हैं तो आप सिर्फ सूचना देंगे और कहेंगे कि आज से ये मानना है और किस्सा खत्म। तो इससे मेरी बुद्धि और आपकी बुद्धि में असमानता का आरम्भ हो गया। और दूसरी असमानता ये है कि मैं जो मानता हूं वह श्रेष्ठ है, जिसे कि मैं पहले ही कह चुका हूं। जहां विवेकशीलता समानता को बढ़ावा देगी वहीं मतारोपण सतत रूप से असमानता को बढ़ावा देता है।

इसको समेकित करें तो ये होगा कि मतारोपण वहीं जड़ पकड़ सकता है जहां कि स्वतंत्र अभिव्यक्ति या सवाल करने पर लगाम लगाई जाती है। यदि कोई मतारोपण करना चाहता है और लोगों को सवाल करने की स्वतंत्रता है तो वे इतने सवाल करेंगे कि वह बहुत भन्ना जाएगा और सवालों के जबाव बहुत मुश्किल हो जाएंगे और उसकी बात का असर खत्म हो जाएगा। इसलिए उसे ऐसा करना पड़ेगा। यदि कोई मतारोपण करना चाहता है तो यही तरीका है कि सवाल बंद कर दिए जाएं। जिससे कि जिन पांच प्रतिशत ने किसी बात को माना है वे तो नहीं उखड़ें। आपने नहीं माना तो मुंह बंद रखो। जिससे मानने वालों को तो कम से कम मेरे विरूद्ध न कर सको। ये पांच प्रतिशत जब तीस साल में अच्छी तरह जम गए तो पांच प्रतिशत और हो जाएंगे। मतारोपण समतल भूमि के बजाए समतल भूमि को अपने पक्ष में मोड़ने की कोशिश करता है। अभिव्यक्ति पर लगाम रखने की कोशिश करता है। दूसरी बात ये है कि प्रतिप्रश्न की गुंजाइश नहीं होती इसलिए दूसरे के मत को सिरे से बिना बहस के खारिज कर देना होता है। ये काम मैं थोड़ा गणितीय ढंग से कर रहा हूं। आपको लग रहा होगा कि मैं जानबूझ कर दो धारणाओं को विकसित कर रहा हूं और यह कहना चाहता हूं कि एक धारणा शिक्षा को पुष्ट करती है और दूसरी धारणा शिक्षा का विरोध करती है। जहां-जहां मतारोपण हो रहा होता है वहां-वहां शिक्षा का विरोधी काम हो रहा होता है और जहां जहां विवेकशील तरीके से वैचारिक उन्नति या वैचारिक बदलाव भी हो रहा है तो वो शैक्षिक विकास होगा। पता नहीं विवेकशील तरीके से अवनति कैसे हो सकती है लेकिन यदि कोई ऐसा माने तो। यहां तक की बात से अब आगे देखते हैं कि ये दोनों बहसें हैं, इनमें ऐसी क्या बात है कि मैं उनको शिक्षा विरोधी कह रहा हूं।

मैं कुछ उदाहरण दूंगा और उन्हें इन दो आधारों पर देखने की कोशिश करेंगे। पाठ्य पुस्तकों और पाठ्यचर्या पर चली बहस इसका उदाहरण है। जो उदाहरण मैं पाठ्यपुस्तकों पर बहस के ले रहा हूं वो पिछले दो-तीन वर्षों के उदाहरण हैं। वो सिर्फ एनसीईआरटी की नई पाठ्यपुस्तकों पर उठे सवाल ही नहीं हैं। वो एनसीईआरटी की पुरानी पाठ्यपुस्तकों पर उठे सवाल भी हैं, कुछ सवाल नई पाठ्यपुस्तकों पर उठे हैं तो कुछ राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों पर उठे सवाल हैं। जिन विद्यार्थियों को नहीं पता है उनके लिए बहुत रुचिकर होंगे ये सवाल, इसलिए वो उनपर थोड़ा ध्यान दें। लगभग दो साल पहले एक बहस उठी थी कि एनसीईआरटी की इतिहास की किसी किताब में यह लिखा हुआ था कि वैदिक काल में आर्य गौमांस खाते थे। कुछ लोगों ने कहा कि इन किताबों में ये कैसे लिख दिया ? बहुत बहस हुई इस पर। सवाल यह भी उठा कि यदि ऐसा लिख दिया तो इसमें बुराई क्या है ? इसके दो जबाव आए। एक जबाव आया कि ये सत्य नहीं है और दूसरा जबाव आया कि अगर ये सत्य है तो

भी इसे विद्यार्थियों को बताने की क्या जरूरत है ? क्योंकि अब तो हम गौ की इज्जत करने वाले हैं और यदि आप इस समाज में गड़े मुर्दे उखाड़कर लाएंगे तो इसका मतलब आप कुछ गड़बड़ कर रहे हैं। यदि यह सत्य भी है तो इसका बखान क्यों कर रहे हैं ? इसे बताने की क्या जरूरत है ? आप लोग इस बहस को याद रखिए, हम देखने की कोशिश करेंगे कि क्यों ये मतारोपण का सवाल है। दूसरा उदाहरण भी इन्हीं किताबों का है, दो-तीन साल पहले की किताबों का, एक किताब में यह लिख दिया गया था कि भरतपुर के इलाके में जाटों ने जब अपना राज्य स्थापित किया तो जाट उससे पहले वहां पर लूटपाट किया करते थे और राजा बनने के बाद भी कुछ दिन लूटपाट करते थे। इससे जाट भड़क गए। उन्होंने कहा कि ये कैसे लिख दिया? इतिहासकारों ने कहा कि ये तो सत्य है। तो जाटों ने कहा कि इससे हमारी भावनाएं आहत होती हैं। अतः यह सत्य हो तो हो, लिखो मत।

तीसरा उदाहरण हमारे राजस्थान का है। कुछ दिन पहले अंग्रेजी की किताब में एक पाठ था नशा मुक्ति को लेकर। किसी उत्साही शिक्षक ने शराब के विरूद्ध बड़े जबरदस्त तर्क दिए। एक तर्क ये भी दिया कि बलराम जी को शराब पीने की आदत थी और इसके कारण उनको कई नुकसान हुए। इस पर राजस्थान में बवंडर मच गया कि आपने बलराम को शराब पीते कैसे दिखा दिया ? अखबार वालों ने रातोंरात शिक्षा मंत्री को फोन किया और शिक्षा मंत्री ने भी कहा कि मैंने तो पहले ही बोल दिया है कि इस पाठ को निकाल दिया जाए। दूसरे दिन जब हमने किताब मंगाई और पाठ देखा तो उसमें ये लिखा हुआ था। फिर पुस्तकालय से महाभारत निकाला। उसमें भी लिखा हुआ था। उसमें बलराम की शराब में रुचि का भी जिक्र है, पीने का भी जिक्र है और एक जगह कम से कम बलराम जी द्वारा शराब पीकर उत्पात मचाने का भी जिक्र है और वो भी राजसभा में। यही जिक्र उन्होंने भी किया था। इसका नतीजा हुआ कि लेखकों को लेखक मंडल से निकाल दिया गया। पाठ को किताब से निकाल दिया गया और लेखक को परेशान भी किया होगा, कम से कम अखबारों में तो यही लिखा था।

ये पुराने उदाहरण हैं। नए उदाहरण भी बहुत हैं। मेरे पास इनकी फोटो कॉपी हैं। मैं ज्यादा उदाहरणों की बात नहीं करूंगा। सिर्फ दो की ही बात करूंगा। प्रेमचन्द की पुरानी लिखी कहानी में जो कि काफी संवेदनशील कहानी है, सामाजिक सरोकार रखने वाली कहानी है। उसमें एक जगह 'भंगन' शब्द आया है। और इसपर ये कहा जा रहा है कि ये तो असंवैधानिक शब्द है। ये कैसे आया किताब में ? और इसको लेकर विरोध हो रहा है कि किताबें ऐसी नहीं होनी चाहिएं जिनमें इस प्रकार के शब्द आएं। कहानी को पूरा पढ़कर कोई नहीं देख रहा है कि उसमें किस के प्रति सम्मान, किसके प्रति असम्मान और कहानी में किस प्रकार की सामाजिक संचेतना की बात की जा रही है ? ये शब्द कहानी में कैसे आया ये मूल मुद्दा बना हुआ है। एक धूमिल की कविता है। उसका बहुत विरोध हो रहा है। धूमिल की कविता मैं सुना सकता हूं आपको। धूमिल ये कहते हैं कि, जिन्दगी जीने का यदि आपके पास कोई खास ठोस तर्क नहीं है कि आप क्यों जिन्दगी जी रहे हैं और कैसी जिन्दगी जीना चाहते हैं, आगे जो शब्द हैं वो बहुत से लोगों को बुरे लगेंगे आप को भी बुरे लग सकते हैं लेकिन मैं जानबूझकर आपके सामने कह रहा हूं जिससे कि हम इनपर विचार कर सकें, धूमिल कह रहे हैं कि बाबूजी जिन्दगी जीने का तर्क यदि साफ नहीं है तो रामनामी बेचकर कमाई करने या रंडियों की दलाली करके कमाई करने में कोई फर्क नहीं है। धूमिल यहां यह कहने की कोशिश कर रहे हैं कि अपनी जिन्दगी के उद्देश्यों के आधार पर आपकी जिन्दगी की कीमत है। आप कमाई किन संसाधनों से करते हैं वो महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। ये ग्यारहवीं की किताब में है। ये वो चीजें हैं जिनके ऊपर बहुत बवंडर मचा हुआ है।

हम यह देखने की कोशिश करें कि इस तरह की चीजों को हटाने की जो बात होती है क्या वह शुभ है ? हो सकता है कि कई बार हटा देना शुभ हो। कुछ चीजें ऐसी हों जिनको हटा ही देना चाहिए। कुछ चीजें ऐसी हों जिनको नहीं हटाना चाहिए। लेकिन सवाल ये नहीं है। हटाने की बात जो लोग कर रहें हैं वह इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वो चीज या रचना शिक्षाशास्त्रीय तरीके से गलत हैं। हटाने की बात इसलिए नहीं कर रहे कि वो तथ्यात्मक रूप से गलत हैं। हटाने की बात इसलिए भी नहीं कर रहे कि इससे सीखने में मदद नहीं मिलेगी। हटाने की बात इसलिए की जा रही है कि इससे कुछ लोगों की भावनाएं आहत होती हैं। अतः आप नहीं लिख सकते। इसमें फर्क समझने की जरूरत है। यदि आप पुस्तक को इसलिए दोबारा लिखवाना चाहते हैं कि पुस्तक शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से खराब है तो ये एक कारण बनता है। यदि आप पुस्तक को इसलिए दोबारा लिखवाना चाहते हैं कि ये शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से सही है, सभी तथ्य सही हैं लेकिन ये मुझे पसंद नहीं है या पांच लोगों को पसंद नहीं है या पांच लाख लोगों को पसंद नहीं है और क्योंकि हम हल्ला कर सकते हैं इसलिए यह गलत है।

थोड़ा यह भी देखने की कोशिश करिए कि इसमें विद्यार्थी, पाठ्यपुस्तक और शिक्षक के बारे में क्या मान्यताएं हैं ? इस तरह की चीजों के बारे में कहा जा सकता है कि जब भी इस प्रकार की चीज पाठ्यपुस्तकों में आती है तो आप सवाल कर सकते हैं कि क्या उनका उपयोग उचित है? इस चरित्र के बारे में यह बात उपयुक्त

है या अनुपयुक्त है ? आप बीएड के विद्यार्थी हैं। आप समझ सकते हैं कि कोई गलत बात या बुरी बात यहां बोर्ड पर लिख दें और इस सदन में उसे बहस के लिए खोला जाता है तो उसका सकारात्मक उपयोग भी हो सकता है। क्योंकि कुछ लोग उसके पक्ष में तर्क देंगे और कुछ लोग उसके विपक्ष में तर्क देंगे। और उससे वैचारिक उन्नति तथा बेहतर तर्क विकसित करने में मदद मिलेगी। इस प्रकार की चीजें पाठ्यपुस्तकों में हो सकती हैं, यह मानकर नहीं चला जाता। यहां पाठ्यपुस्तक को सत्य ज्ञान का खजाना मानकर चला जा रहा है। उसमें जो कह दिया गया वह सबको मानकर चलना पड़ेगा। और यदि उसमें मेरे विरूद्ध बात कह दी जाएगी तो मेरी सत्ता भंग हो जाएगी। अतः उसमें वह कहा जाए जो मैं चाहता हूं।

दूसरी भावना यह है कि विद्यार्थी में दिमाग नहीं होता। किस चीज को सोच-समझकर इसमें से अस्वीकार करना है और किसे स्वीकार करना है यह क्षमता विद्यार्थी में नहीं मानी जाती। यह माना जाता है कि उसको पाठ्यपुस्तक के माध्यम से जो दे दिया जाएगा वह उसको गटक लेगा और यथावत मान लेगा। तीसरी धारणा ये है कि शिक्षक कक्षा में सवाल नहीं उठा सकता। उसको पाठ्यपुस्तक के अनुसार ही पढ़ाना पड़ेगा और उसे ही सत्य बताना पड़ेगा। चौथी धारणा परीक्षा के संदर्भ में है कि जो पाठ्यपुस्तक में लिखा है उसे मानकर ही लिखने पर अच्छे अंक मिलेंगे। इस संपूर्ण व्यवस्था को देखिए ये मतारोपण की व्यवस्था है। क्योंकि जो पाठ्यपुस्तक में है वही आपको लिखना पड़ेगा, वही बार-बार रटना पड़ेगा और वही शिक्षक को बोलना पड़ेगा। इसका मतलब पाठ्यपुस्तक मतारोपण का एक औजार है और शिक्षा के माध्यम से मतारोपण का एक बड़ा-सा कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिसमें हजारों करोड़ों लोग लगे हुए हैं। इसलिए मुझे ऐसा लग रहा है कि इस बहस का कोई भी शिक्षाशास्त्रीय और दार्शनिक पक्ष नहीं है। पाठ्यपुस्तकों में लोगों को ये बातें बुरी लगीं और लोगों को बुरी लगीं इसलिए इनको हटा दो, मात्र ये तर्क दिया जा रहा है। इसलिए यह मतारोपण की बहस है। यह विवेकशील चिन्तन की बहस नहीं है। अतः यह शिक्षा विरोधी है।

दूसरा उदाहरण हम शिक्षाक्रम (एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005) से लेंगे। ये बीएड के विद्यार्थियों के लिए और महत्त्वपूर्ण होगा। शिक्षाक्रम पर बहुत से सवाल उठे, बहुत बवंडर हुआ, मैंने जान-बूझकर तीन सवाल चुने हैं। उन्हीं की बात करेंगे। नए पाठ्यचर्या दस्तावेज में यह कहा गया है कि बच्चों को कक्षा में अपना ज्ञान सृजित करने के अवसर होने चाहिएं। इसका मतलब है कि जब आप बच्चों को पढ़ाएं तो सिर्फ सूचनाएं उनके मन में मत डालिए। सिर्फ उनको भाषण मत देते रहिए। उनको कुछ गतिविधि करने दीजिए। उनको कुछ सोचने दीजिए। उनको अपनी तरफ से कुछ अंदाजा लगाने दीजिए। उस अंदाजे को दूसरों के सामने अभिव्यक्त करने दीजिए। उसपर चर्चा होने दीजिए। उसपर बहस होने दीजिए। उसको जांच के तरीके सिखाइए। और अपने अंदाजे को खुद जांचकर अपने नतीजों को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने के तरीके उन्हें सिखाए जाने चाहिएं। ऐसी कक्षा कैसे चलाई जाए इस पर बहुत काम हो चुका है। ऐसी कक्षाएं चलाया जाना संभव है और चलती हैं। बच्चे सीखते भी हैं। इसको संरचनावादी दृष्टिकोण कहते हैं। इसमें कहा जाता है कि बच्चा जहां पर है और जो जानता है वहां से आरम्भ करते हुए आप जो सिखाना चाहते हो वहां तक आने के लिए आप विवेकपूर्ण विवेचना के माध्यम से और बच्चे के अनुभवों को काम में लेते हुए, बढ़ते हुए आगे बढ़ें और उसमें भी बच्चे की मदद करें कि वह खुद वहां तक पहुंचे। एक बात तो यह कही है।

पाठ्यचर्या दस्तावेज में और बहुत-सी बातें हैं लेकिन दूसरी बात ये कही गई है कि स्थानीय लोगों के ज्ञान को भी कक्षा में आने दिया जाए। आप जब वनस्पतिशास्त्र की बात करते हैं और वनस्पतियों के नाम बताते हैं तो गांव में उस वनस्पति का क्या नाम है, वहां के लोग उसे क्या कहते हैं, ये भी बच्चे को बताएं। गांव वाले उसे किस काम में लेते हैं ? उसके क्या गुण मानते हैं ? उसे जिन्दगी के लिए अच्छा मानते हैं या बुरा मानते हैं ? किन परिस्थितियों में पैदा होता है ? लेकिन जब आप वनस्पति के बारे में आने देंगे तो मूल्यों के बारे में भी आएगा। इतिहास के बारे में भी आएगा। बीमरियों के बारे में भी आएगा और विज्ञान के बारे में भी आएगा। अर्थात् स्थानीय ज्ञान को कक्षा में आने दीजिए। आप मेरे शब्दों पर ध्यान दीजिए स्थानीय लोगों के ज्ञान को मान लीजिए नहीं कह रहे हैं, आने दीजिए कह रहे हैं। वे कहते हैं कि कक्षा में आने दीजिए, उसपर चर्चा होने दीजिए, उसपर विवेचना होने दीजिए। यदि वो आपके ज्ञान से सही होगा, बेहतर होगा तो टिक जाएगा; नहीं होगा तो उसका परिष्कार हो जाएगा। लेकिन उसको यह मानकर अनदेखा मत करिए कि वे बेवकूफ हैं, वे कुछ नहीं जानते।

तीसरी बात ये कही है कि ज्ञान व्यवस्थित अनुभव का नाम है और ज्ञान को हम व्यवस्थित अनुभव के रूप में देख सकते हैं। इसका मतलब है कि अनुभव अलग चीज होती है, वह इन्द्रियगत चीज होती है और ज्ञान वैचारिक और अवधारणाओं से बनता है। अनुभव और ज्ञान दो अलग-अलग चीज होती हैं। अनुभव तो कई बार अव्याख्यायित और बिना सूत्रबद्ध भी रहता है। ज्ञान तो सूत्रबद्ध होता है और जिसके सत्य को जांचा जा चुका है। अनुभव में क्या सत्य, क्या असत्य; अनुभव तो दर्ज हो रहा है। उसके सत्य को

जांचने का सवाल ही नहीं उठता। तो ज्ञान को व्यवस्थित अनुभव कैसे कह सकते हैं ? ये तीन मुद्दे हैं जिनपर बहुत आक्रमण हुआ। लेकिन इनके जबाव नहीं दिए गए, इन पर बातचीत नहीं हुई और इनको बहुत कठोर ढंग से नहीं उठाया गया। जिस तरह से आजकल ज्ञानमीमांसा में काम हो रहा है उसके आधार पर इन आपत्तियों के जवाब दिए जा सकते हैं। एक मामला ये है कि ज्ञान कुछ इस प्रकार की चीज है जो फिनिस्ड प्रोडेक्ट है। जो पहले से किताबों या एनसाइक्लोपिडिया में है। सारा कि सारा ज्ञान बन चुका। अब पाठ्यपुस्तक के माध्यम से हमें बच्चे को हस्तांतरित कर देना है।

अनुभव और ज्ञान का अलग-अलग तो हैं, जिसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 भी कहती है, और प्रत्येक अनुभव ज्ञान में तब्दील नहीं होता लेकिन ज्ञान के लिए अनुभव अनिवार्य हैं। बच्चे अनुभवों को सूत्रवद्ध करके ही सार्थक ज्ञान की रचना कर सकते हैं। इन्द्रियगत अनुभवों की ज्ञान निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है लेकिन ज्ञान अनुभव से परे की कोई चीज नहीं होता। बच्चे का अनुभव अवधारणाओं के माध्यम से ज्ञान में तब्दील होता है और भाषा से उसका सह-संबंध उसे ज्ञान के रूप में संजोता है।

अनुभव और भाषा का संबंध बनने से ही बच्चे के मन में सूत्रबद्ध और स्थायी होता है। दोनों के आधार पर ही ज्ञान विकसित होता है। उनके अनुभवों को इस ढंग से भाषा के माध्यम से व्यवस्थित करता है। इसका एक उदाहरण देखें। ये मैं समझने के लिए कह रहा हूं ताकि इसे ठीक से समझा जा सके। आप किसी भी प्रकार के एक अनुभव के बनने की बात करें। गिलास की ही बात करें तो आपको एक तो अनुभव होता है। जिस प्रकार की चीज को देखते हैं। गिलास को आप एक वस्तु कह सकते हैं। मानव के काम आने वाली वस्तु। गिलास की अवधारणा बनने में आपने बार-बार गिलास को देखा। बार-बार देखने के बाद आपने इसके उपयोग को देखा। इसके आकार और उपयोग को मिलाकर आपके मन में इस वस्तु की छवि बनी। ये अनुभव के आधार पर बनी। और इसको नाम दे दिया गिलास। अब इसके साथ एक शब्द जुड़ गया। आपके मन में एक छवि है और भाषा में एक शब्द है। जब भी आपके कान में ये शब्द पड़ेगा तो आपके मन में वो छवि उभर जाएगी। यही होता है अमूमन अवधारणा के संदर्भ में।

एक अन्य उदाहरण, जैसे मैं अभी कहूं बिल्ली। तो आपमें से बहुत से लोगों के मन में एक जानवर की छवि उभर रही होगी जो कि दो मिनिट पहले नहीं थी। तो ऐसा क्या जादू हुआ कि वह उभर गई? एक तो आपके कान में कुछ शब्द पड़े। दूसरे आपको वो जानवर देखने के हजारों अनुभव हैं। और दोनों को आपने सह-संबद्ध कर दिया। आपका बिल्ली का जो ज्ञान है एक तो वह आपके अनुभव के आधार पर है और दूसरी तरफ आपकी सामाजिक अन्तःक्रिया के आधार पर है। इन दोनों के मिलने से बिल्ली की छवि आपके मन में उभरती है। यह दावा किया जा सकता है कि सारे ज्ञान की यही पद्धति है। जिसमें एक तरफ अनुभव होता है तो दूसरी तरफ सामाजिक अन्तःक्रिया होती है। इन दोनों को जोड़ने वाले तंत्र के रूप में भाषा होती है। भाषा के माध्यम से व्यवस्थित अनुभव का नाम ही ज्ञान है। जैसे ही आप ये मान लेते हैं आपको यह मानना पड़ता है कि बच्चा अपने ज्ञान का सृजन खुद करता है। जैसे ही आप यह मान लेते हैं आपको यह भी मानना पड़ता है कि गांव वालों के पास भी अपना ज्ञान हो सकता है। हो सकता है वह आपके ज्ञान से भिन्न हो और उनका काम आपके पास मौजूद ज्ञान से कम चलता हो। लेकिन इससे लोगों को बहुत समस्या है। यह कहा गया कि गांव में तो जातिवाद भी है। गांव में तो अन्धविश्वास भी हैं। गांव में तो दुराग्रह भी हैं। यदि उसको कक्षा में आने देंगे तो शिक्षा का क्या होगा ? बच्चे के बारे में भी कहा गया कि यदि बच्चे अपने अनुभव से ज्ञान बना ही लेते हैं तो उनको शिक्षा की क्या जरूरत है ? कुछ अगंभीर लोगों ने ऐसी बातें कहीं। कुछ गंभीर लोगों ने दूसरी तरह के तर्क दिए कि बच्चे कक्षा में जिस प्रकार के ज्ञान का निर्माण करेंगे तो जो आपका सिद्ध और जांचा हुआ मानवीय ज्ञान है क्या उसमें अन्तराल नहीं होगा, इसके क्या प्रमाण हैं ? अर्थात् बच्चे किसी दूसरी तरह का विज्ञान बनाकर पास हो जाएंगे। और जो जांचा-परखा वैज्ञानिक ज्ञान है उसमें अन्तराल रहेगा, इसका क्या होगा ?

सवाल ये है कि संरचनावादी शिक्षाशास्त्र जो समझ हमें देता है उसमें इन सब चीजों के बड़े ही साफ-सुथरे जबाव हैं। ये कोई नहीं कह रहा है कि बच्चों के ज्ञान को वहीं पर बनाने के लिए छोड़ दीजिए और आप उसमें किसी भी प्रकार की मदद नहीं करेंगे। यह कहा जा रहा है कि उन्हें अवसर दीजिए कि वे अपने अनुभवों और अवधारणाओं के बारे में सोच सकें।

ये तीनों उदाहरण मैंने इसलिए दिए हैं कि इनमें वे सभी बातें मौजूद हैं जिन पर की जा रही बहस को मैं शिक्षा विरोधी कह रहा हूं। इनके बच्चे के बारे में निहितार्थ ये हैं कि वो सिर्फ ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं, नया बनाने में योगदान नहीं कर सकते। दूसरा, ज्ञान के बारे में कि वह फिनिस्ड प्रोडेक्ट है। वह हर स्कूल की कक्षा में सिर्फ हस्तांतरित किया जा सकता है, हर गली, चौराहे पर बनने वाली चीज नहीं है। तीसरी बात समुदाय के बारे में कही जा सकती है कि उनके विचारों में परिवर्तन करने के लिए उन्हें शामिल करने की जरूरत नहीं है। उन्हें सिर्फ बता देना काफी है कि वे गलत हैं। जबकि ये बात हजारों बार सिद्ध हो चुकी है कि समुदायों में विचारों

का परिवर्तन एक संवाद में शरीक होकर ही संभव है। संवाद में शरीक होने का मतलब है कि आप सामने वाले को अपने बराबर का ही बुद्धिमान मानें। समानरूप से सम्मान का पात्र मानें। उसकी बात को धैर्य से सुनें। उसकी बात में यदि आपको कमी लग रही है तो उसे धैर्य से बताएं। यदि आपके पास विकल्प हैं तो उसे बताएं और यदि नहीं हैं तो चुप रहें और उसे खुद ढूंढ़ने दें। यदि यह प्रक्रिया दो-तीन-चार साल चलेगी तो वह व्यक्ति अपना मत इस बारे में बदलेगा। इसके बिना जो सीधा ज्ञान देने का मसला होता है उसके बारे में दो तरह की व्यवस्था हमारे मन में रहती हैं, आप ध्यान देंगे तो पाएंगे हम भारतीयों के मन में दो तरह की व्यवस्था रहती है। एक से हम जिन्दगी जीते हैं, बीबी-बच्चों के साथ व्यवहार करते हैं, रिश्तेदारों से व्यवहार करते हैं, शादी-विवाह में काम लेते हैं, लड़के-लड़कियों के विवाह में जन्मपत्री दिखवाते हैं और दूसरे हम फिजिक्स की प्रयोगशाला में घनघोर प्रयोग करते हैं और बुद्धिवाद पर भाषण देते हैं। इन दो अलग-अलग धाराओं में जिन्दगी चलती रहती है। हम स्वयं ज्ञान के सृजक हो सकते हैं, ज्ञान को जांचने के तरीके हमारे पास हो सकते हैं, इन दोनों ही सिद्धान्तों को नकारने का काम करते हैं। मुझे ऐसा लग रहा है कि ये बहस भी दोबारा से ज्ञान की अपनी धारणा को भारत के करोडों बच्चों पर लादने की मुहिम के रूप में है। अतः यह भी मतारोपण की श्रेणी में है।

चौथी बात मैं ये कहना चाह रहा था कि क्या यह सिर्फ शिक्षा में हो रहा है या हमारे समाज में विचार की स्वतंत्रता पर और भी व्यापक आक्रमण हो रहे हैं ? मुझे लगता है कि हमारे समाज में विचार की स्वतंत्रता पर व्यापक आक्रमण हो रहे हैं। मैं आपको दो विवादास्पद उदाहरण दिए देता हूं। हुसैन साहब ने कुछ साल पहले सरस्वती की एक पेंटिंग बनाई। कुछ लोगों को वह पेंटिंग बहुत नागवार गुजरी क्योंकि उनके मन में सरस्वती की एक दूसरी प्रकार की छवि थी। तो उन्होंने कहा कि इसको जला देना चाहिए और हुसैन के खिलाफ आन्दोलन करना चाहिए। यहां पर एक पेंटिंग के विरूद्ध आन्दोलन की बात है। अगले साल उन्होंने भारत माता की तस्वीर बनाई। उस पर फिर से यही हुआ। हम एक कलाकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को इसलिए रोकना चाहते हैं कि उससे हमारी भावनाएं आहत होती हैं। अतः हम उसका विरोध करते हैं। इसका मतलब है कि हुसैन को सरस्वती की सिर्फ वैसी तस्वीर बनानी चाहिए जैसी मेरे मन में है। अर्थात् मुझे मेरे वाली तस्वीर को बनाकर उसके प्रसार का पूर्ण अधिकार है लेकिन हुसैन वाली तस्वीर के ऊपर मैं लगाम लगाना चाहता हूं।

कुछ दिनों पहले दक्षिण भारतीय अभिनेत्री खुशबू ने कह दिया कि भई, लोग कैसे कपड़े पहनें ये उनकी स्वतंत्रता है। यदि किसी को लगता है कि ऐसे कपड़े पहनने चाहिएं जिसमें कि शरीर दिखे तो ये उनका अपना चुनाव है। आप इसमें कहने वाले कौन होते हो ? इससे उनपर माफी मांगने के लिए दबाव डाला गया। सड़कों पर बहुत तोड़-फोड़ हुई और उसको माफीनामे जैसी कुछ अधकचरी बातें कहनी पड़ीं। हालांकि वो मुझे काफी दबंग महिला लगती है क्योंकि वह बीच-बीच में कुछ शिगूफे छोड़ती रहती है। लेकिन एक बार तो लोगों को शान्त करने के लिए कुछ कहना ही पड़ा। यहां फिर से वही बात हो रही है कि मुझे मेरे विचारों के प्रचार-प्रसार की तो स्वतंत्रता है लेकिन वही स्वतंत्रता दूसरे व्यक्ति को नहीं है। किसी भी व्यक्ति ने ये नहीं कहा कि मैं आपके कथन को चुनौती देता हूं और मैं इसे नैतिक दृष्टि से गलत साबित करता हूं कि आपने गलत बात क्यों कही। किसी ने लेख नहीं लिखा, किसी ने बहस नहीं की। बात का जवाब सड़क पर आकर नारे लगाकर दिया जाता है। बात का जवाब पत्थर से दिया जाता है। बात का जवाब मारकूट से दिया जाता है। ये खास प्रकार का व्यवहार है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि बात का जवाब बात से दिया जाए?

चलिए और उदाहरण देखते हैं। ऐसा नहीं कि ऐसा सिर्फ धर्म में होता है। पहले में धर्म के रख वालों ने किया। दूसरे में नैतिकता के रखवालों ने किया। कुछ प्रगतिशील लोग भी समझते हैं कि सिगरेट नहीं पीनी चाहिए। सिगरेट पीना बहुत बुरी बात है, ये मैं भी जानता हूं। सब जानते हैं। कोई नहीं चाहता हमारे बच्चे सिगरेट पीएं। लेकिन डॉन में शाहरूख खान ने सिगरेट पी, सिगरेट हटाओ नहीं तो हम डॉन फिल्म को नहीं चलने देंगे। अर्थात् आप ये कह रहे हैं कि जो चीज सही है उसके विरूद्ध समाज में कुछ होता है तो वो मत दिखाइए, उसका जिक्र भी मत करिए। वो कहानी की मांग है, कला की मांग है तो आप उसकी बात मत करिए। आपने ये भी सुना होगा कि जिन पुरानी फिल्मों में विशेष रूप से नायक और खलनायक सिगरेट पीते हैं वो भी अगर दूरदर्शन पर प्रदर्शित हों तो उसमें से भी सिगरेट वाला हिस्सा हटा देना चाहिए। ये प्रेमचन्द की कहानियों के बारे में भी उठ चुका है। रंगभूमि की कुछ प्रतियां जलाई गई थीं कि उसमें चमार शब्द आ गया है इसलिए वो किताब ही खराब है। जबकि शायद भारतीय इतिहास में वह पहली पुस्तक है जिसमें नायक दलित है और जो आखिर में जीतता है। ये एक ऐसा दलित नायक है और जीतता है जो अपनी सारी जिन्दगी सिद्धान्तों पर टिककर जीता है। लेकिन एक शब्द के कारण किताब को जलाया जाना, इसमें सारी प्रवृत्ति वही है जिसे मैं शिक्षा विरोधी कह रहा हूं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर भी ऐसी चीजें बहुत होती हैं। हाल ही हम दो देख चुके हैं। डेनमार्क में किसी कार्टूनिस्ट की इच्छा हुई कि वह

इस्लाम पर या मोहम्मद साहब पर कुछ कार्टून बनाए। उन्होंने कार्टून बनाए और सारी दुनिया में बड़ा जबरदस्त बवेला मचा। बहुत दिन तक अखबार के संपादक ने बचाव किया। लेकिन आखिर में उसको माफी मांगनी पड़ी। इसमें भी किसी ने यह नहीं कहा कि आप जिस तरह मोहम्मद को चित्रित कर रहे हो, इस्लाम को चित्रित कर रहे हो वह ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है। इसके लिए मैं ये तर्क देता हूं, मैं ये लेख लिखता हूं और इसलिए या तो आप उसका तर्कपूर्ण जवाब दो या मेरे सामने बौद्धिक बातचीत के लिए खड़े होओ। ऐसा किसी ने नहीं कहा। कहा ये गया कि आप ऐसा नहीं कर सकते या आप ऐसा करोगे तो आपसे संबंध टूट जाएंगे, हिंसा होगी, राजनयिक ठिकानों पर पत्थर पड़ेंगे।

हाल ही में पोप ने किसी पुरानी किताब से उठाकर कोई उद्धरण दे दिया था और तीन दिन बाद उन्हें भी माफी मांगनी पड़ी। आपको अटपटा जरूर लगेगा लेकिन मुझे प्रेमचन्द की किताब से चमार शब्द हटाना, हुसैन की सरस्वती की पेंटिंग पर बवंड़र करना, इससे पहले अयोध्या में राम और सीता पर एक प्रदर्शनी लगाई गई थी उस प्रदर्शनी को लोगों ने जला दिया था, क्योंकि कुछ ऐसी रामायण की कथाएं हैं जिनमें राम और सीता को भाई-बहिन बताया गया है और पति-पत्नी भी बताया गया है। ऐसी रामायण को मैंने खुद मंचित होते हुए देखा है। ऐसी रामायण की कहानियां तो हैं लेकिन यदि आप उनका जिक्र कर दो तो आपकी प्रदर्शनी जला दी जाएगी या मोहम्मद साहब के कार्टून बनाना या कोर्ट का वक्तव्य या प्रेमचन्द की किताब में से चमार शब्द को हटाने की सारी की सारी चीजें बात का जवाब पत्थर, आन्दोलन, हिंसा से देने की कोशिश है। अर्थात् मैं अपनी बात का प्रचार करने के लिए स्वतंत्र हूं लेकिन आप अपनी बात प्रचारित करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। ये जहां-जहां होता है वहां-वहां मतारोपण होता है और वो शिक्षा का विरोधी है। इसका हम क्या कर सकते हैं ? मुझे ऐसा लगता है, हमें शिक्षा और सामाजिक संवाद में जहां-जहां पर अन्धी और तर्कविहीन आस्था है उस पर धैर्य, सम्मान और बेझिझक सवाल उठाने की प्रवृत्ति को पनपाना चाहिए। जितनी भी दिक्कतें आएं पूरी तरह से सम्मानपूर्वक लेकिन सवाल नहीं मरे।

अविचारित आस्था कुछ ऐसी चीज है जो अपना दायरा बढ़ाती है। यदि आपने अविचारित आस्था के लिए एक इलाका छोड़ा तो दूसरे व्यक्ति को दूसरा इलाका चाहिए या तीसरे को तीसरा चाहिए। और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता समाज में पूरी तरह से दम तोड़ देगी। इसका एकमात्र तरीका है कि यदि सवाल उठाने की स्वतंत्रता होगी तो सब चीजों पर होगी लेकिन उस सवाल को हम पूरी तरह संयमित ढंग से और बेझिझक रूप से पूरी इज्जत के साथ उठाएंगे। इसका एक तरीका है जो संवाद में स्थापित हो चुका है कि सवाल विचार पर हो विचारक के व्यक्तित्व पर नहीं हो। आप किसी विचार की आलोचना करें वह जिसका विचार है उसकी आलोचना नहीं करें। एक तो यह शर्त माननी चाहिए। दूसरी मैं पहले ही कह चुका हूं कि पूरे सम्मान के साथ होनी चाहिए। मुझे ऐसा लगता है कि यदि हमने इस स्पेस को सिकुड़ने दिया तो धीरे- धीरे विवेक की बात शिक्षा ही नहीं सब जगह खत्म हो जाएगी। यदि हमें इसके लिए लड़ना है तो ये शांतिपूर्ण ढंग से सतत चलने वाला काम है और इसमें हो सकता है कि आस्था भी अधिक लचीली, मानवीय और ज्यादा चमकदार वस्तु के रूप में उभरे। क्योंकि कुछ लोग ऐसे हैं जो अपनी आस्था को बरकरार रखते हुए बौद्धिक विमर्श में, विवेक के साथ उपस्थित होते हैं और प्रश्न को कभी भी अति-प्रश्न नहीं कहते। मैं ऐसे सब प्रकार के लोगों को जानता हूं जो व्यक्तिगत रूप से जो संवाद करते हैं उसमें उनकी आस्था की दृढ़ता साफतौर पर महसूस होती है कि आप उसे नहीं मिटा सकते लेकिन वे आपके सवाल को नहीं बांधते और हर प्रकार के सवाल का जवाब देने की कोशिश करते हैं। आप सहमत हों, नहीं हों वो अलग प्रकार की बात है। तो हमें किसी तरह पूरे समाज में खुले तौर पर प्रत्येक प्रकार के भगवानों के बारे में, प्रत्येक प्रकार के नेताओं के बारे में, प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक विचारधाराओं के बारे में और प्रत्येक प्रकार के महापुरुषों के बारे में पूरी शालीनता से तीखे सवाल उठाने की परिपाटी पाठ्यपुस्तकों और रोजमर्रा की जिन्दगी में बनानी होगी। मुझे लगता है कि इसके बिना ज्यादा दिन तक विवेक की रखवाली करना संभव नहीं है।

आखिर में एक बात और कहूंगा, जो कि भारत के संदर्भ में हमारे लिए ज्यादा जरूरी हो गई है क्योंकि यूरोप में जहां पर विवेक को थोड़ी बहुत जगह मिली थी वो वहां के बुद्धिजीवियों ने कई सौ साल तक लड़के प्राप्त की थी। वह हमको लगभग प्लेट पर रखी हुई स्वतंत्रता के बाद मिली है। हमने उसकी कीमत अभी तक चुकाई भी नहीं है। तो हममें से जो विवेक के दायरे को खुला रखना चाहते हैं उनको ये कीमत अब चुकानी होगी। कई बार ऐसा होता है कि चीज आपने पहले खरीद ली और किश्त का भुगतान बाद में करते हैं, तो आपको ये किश्त अब चुकानी होगी। धन्यवाद। ◆